गोस्वामी तुलसीदास सृजित हिन्दी की काल कालजयी कृति रामचरित मानस में मानवम मूल्य

जगपाल सिंह यादव,

ज्वालामुखी मंदिर के पास
रानीगंज मोहल्ला पन्ना–जिला,पन्ना (म.प्र.)

अपनी परम्परा के उत्स के प्रति श्रद्धा रखना उचित ही है। खासकर जब वह अखिल धर्मों का मूल भी हो किन्तु इसका मतलब भी नहीं कि तुलसी वेदों के अक्षरों से बंधे हुए थे तुलसी ने चरम मूल्य राम को माना है वेदों को नहीं। गोस्वामी तुलसीदास का उत्कृष्ट साहित्य, जिस प्रकार लोक कल्याण की भावना से ओतप्रोत है उसी प्रकार उनके जीवन और व्यक्तित्व में से जाने कितनी उत्साह वर्द्धिनी, प्रेरणादायिनी शक्ति छिपी है। तुलसीदास के अनुसार चारों वेद तो श्री राम की सहज सांस भर है अतः श्री राम से जुड़कर वेद का अतिक्रमण कर जाना उनकी दृष्टि में सुसंगत है। वैदिक सिद्धान्तों की समयानुकूल व्याख्या तुलसी को विशिष्ट स्थितियों में वे लोक वेद से भी अधिक महत्व देने के पक्ष में हैं।

भारत सदियों से विश्वबन्धुत्व, वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामया, क्षमा, परोपकार, सेवा, त्याग, दान, धर्म, नारी अस्मिता, गीता का कर्मयोग, सहिष्णुता, साधुता, पुरूषार्थ, पारिवारिक मर्यादा आदि मूल्यों के कारण जगतगुरू की पदवी से विभूषित था। तुलसी के राम भी जीवन भर इन्हीं मूल्यों के लिए संघर्ष करते रहे, स्वयं तुलसी भी। मूल्यों के लिए समर्पित होने की वजह से ही तुलसी काशी के पण्डितों की क्रोधाग्नि के शिकार हुए। कहीं–कहीं तो तुलसी और राम एक दिखाई देने लगते हैं। कारण भी है एक दिखाई देने के। **डॉ. शिवकुमार मिश्र** के शब्दों में ''राम के प्रति गोस्वामी जी की यह अविचल आस्था है उसके मूल में संभवतः श्रीराम और स्वयं उनके, कुछ मिलते–जुलते जीवन –संदर्भ हैं। गोस्वामी जी बचपन में ही माता–पिता से अलग हो गए थे। श्रीराम भी बचपन में माता–पिता से अलग विश्वामित्र के संरक्षण में रहे। युवावस्था में जिस तरह तुलसीदास को पत्नी के लंबे विछोह को झेलना पड़ा, श्रीराम को भी सीता के हरण के चलते पत्नी–विछोह की व्यथा लंबे समय तक झेलनी पड़ी। ''[1] स्वाभाविक है जब जीवन–संघर्ष एक जैसा हो तो 'मूल्यबोध' भी एक जैसा ही होगा।

तुलसी भारतीय जनमानस के सिरमौर हैं क्योंकि वह उसके मूल्यों के लिए मन से न्यौछावर हैं। तुलसी को पता था कि 'जहाँ धर्म है वहीं विजय है', 'जहाँ सत्य है वहीं विजय हैं, 'जहाँ मूल्य है वहीं विजय है'। 'रावन रथी, विरथ रघुवीरा' देखकर विभीषण को जो शंका होती है वह मात्र विभीषण की शंका नहीं है वह उन सभी की शंका है जो अत्याचार को दस मुख से दसों दिशाओं में फैलते देखकर भयभीत हो जाते है या मनोबल टूटने लगता है।

मानव जीवन में महत्वकांक्षाओं, कीर्ति ओर सम्मान का विशेष स्थान होता है। साधारण व्यक्ति ही क्या उदान्त चरित्र व्यक्ति भी कीर्ति पिपासा का शमन नहीं कर सकते, बड़े से बड़ा सांसारिक पुरुष भी अपनी प्रतिष्ठा का भूखा होता है। वह किसी विशिष्ट स्थान पर पहुँच कर ख्याति पाने से पूर्व ही संसार को अपना परिचयात्मक विज्ञापन

देता रहता है। ऐसा करने से उसकी ख्याति उनके अनेक पूर्वजों की ख्याति को विस्तृत करती हुई स्वयं बढ़ती है। परंतु कुछ अपवाद स्वरूप ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जिसे इन सब की तनिक भी चिंता नहीं रहती कि मैं बड़ा कार्य करुँ जो मुझे सम्मान के शिखर पर आरूढ़ कराए। ऐसे लोगों का लक्ष्य महान होता है। उनकी अधिकतम अभिलाषा यही होती है कि उनके कार्य से विश्व का परम कल्याण हो, उनका क्या पता है। वे इसे गुप्त ही रखते हैं। उनके लिए व्यक्ति नहीं उसकी कृति अधिक महत्व रखती है। ऐसे विचार वाले व्यक्ति ही संत कहलाते हैं। वे स्वयं को तुच्छ और लोक हितार्थ कार्य को महान मानते हैं। कुछ ऐसा ही संत तुलसीदास ने किया। उन्होंने जिस लक्ष्य को साधा, उसके द्वारा समस्त मानव जाति का कल्याण किया। अनेक विविधाओं द्वारा जनहित कार्य सम्पन्न किया। जो चाहे उनके ईष्ट राम से उनका पूर्ण परिचय पा सकता है। यही ध्येय था इस महान संत का। राम सेवक के रूप में सर्वत्र चर्चित उनकी झाँकी के दर्शन कालजयी है। उनकी कृतियों द्वारा कुछ साक्ष्य प्राप्त हुए जिनसे अनेक जन्म इत्यादि का विवरण मिलता है। ''विनय पत्रिका'' और ''कवितावली'' की कुछ उक्तियों से स्पष्ट होता है कि तुलसीदास का जन्म किसी ब्राह्मण कुल में हुआ था। ब्राह्मण कुल वैसे भी वैभवशाली नहीं होते पर जिस कुल में तुलसी का जन्म हुआ वह तो बहुत ही दीन था। दीनता का अनुमान पुत्र जन्म पर उत्सव न मना कर विषाद की चादर ओढ़ी; इसी से किया जा सकता है। दरिद्र माता–पिता के गृह में पैदा तो हुआ और माता–पिता के प्रेम से शीघ्र ही वचित हो अनाथ भी हो गए। अनाथ दीन हीन बालक द्वार–द्वार भीख माँगने के सिवा कर भी क्या सकता था। उदराग्नि के कारण सुजाति कुजाति सबका दिया टुकड़ा खाना पड़ता। भिक्षा के लिए दाताओं के पैरों तक गिरना पड़ता था। एक अनाथ बालक मुट्ठी भर अनाज के लिए कितना दुःखी और अपमानित हो कर घूमता था, इसका अनुमान –''दुखउ दुखित मोहि हेरे''

तुलसी स्वयं बैरागी थे किन्तु पूरे समाज को बैरागी नहीं बनाना चाहते थे। रामचरित मानस सुनकर राम से जुड़कर व्यक्ति में उपलब्धि कांक्षा जागे वह कपटी कायर, कुमति, कुजाति, लोक वेद बाहेर सब भाँति; होता हुआ भी भुवन भूषण बने बुद्धि विवेक विग्यान निधाना हो जाये उसे देख कर लोग कह उठे –

''कवन सो काज कठिन जग माँही'',

जो नेहि होह तात तुम्ह पाहीं।।[2]

और वह सचमुच असम्भव को सम्भव कर दिखायें यह सब तुलसीदास को अभीष्ट था। तभी उन्होंने कहा था।

''समर विजय रघुवीर के चरित जे सुनहि सुजान,
विजय विवेक विभूति नित तिन्हहि देहि भगवान''[3]

आधुनिक दृष्टि के साथ तुलसी इस बात पर तो सहमत हैं कि – नहिं दरिद्र सम दुःख जग माहि।[4] किन्तु वे इसके विलोम को सच नहीं मानते इसके साथ ही प्राचुर्य को ही सर्वोपरि सुख करार नहीं देते।''जौ अनीति कहु भाषो भाई, तो मोहि बरजहु भय विसराई''[5] जैसी उक्तियों के द्वारा तुलसी ने जिन मूल्यों को स्वीकृति मध्यकाल में दी थी वे उन मूल्यों के काफी निकट हैं जिन्हें आज का विज्ञान अपने विकास के लिए आवश्यक मानता है। भारत में वैज्ञानिक चिन्तन और पौराणिक कल्पना दोनों का सह–अस्तित्व चलता रहा है। तुलसी पुराणशैली के रचनाकार हैं। फलतः वैज्ञानिक चिन्तन के विरोधी हैं यह मानने का कोई कारणनहीं है। इनमें सन्देह नहीं कि तुलसी वेदों का बहुत आदर करते थे। उन्होंने स्पष्ट कहा है।

'अतुलित महिमा वेद की; तुलसी किये विचार; जो निन्दन निन्दित भयो विदित बुद्ध अवतार।

जब मानस की रचना का आरंभ संवत् 1639 में अयोध्या में हुआ और उसके अंतिम चार कांडों की समाप्ति काशी में हुई। अतः वे काशी में संवत् 1639 से 1643 के बीच किसी समय आए और यहाँ स्थायी रूप से रहे। तुलसीदास के काशी आगमन पर उनसे संबंधित भिन्न धारणाएँ वहाँ के विशिष्ट समाज में पनपने लगी। उनकी रामभक्ति को रूढ़िवादियों ने कुछ और ही समझा। कुछ लोगों ने उन्हें दगाबाज, कुसाज इत्यादि अपशब्दों से विभूषित किया तो वहीं पर कुछ विचारशील विद्वानों द्वारा उन्हें राम का विशुद्ध भक्त स्वीकारा। इस प्रकार काशी के लोगों ने अनेक प्रपंच फैलाए परंतु वे अपने लक्ष्य पर अडिग रहे। रामनाम के अमृत का पान करते हुए काशी सेवन करते रहे। ''माँगि कै खैबो मसीत को सोइबौ'' वाली स्थिति से भी संतुष्ट थे। इतने पर भी काशी वालों ने इस निश्छल व शांत महात्मा को पीड़ित कर उनके समक्ष तरह–तरह के विरोध व संघर्ष रखे। काशी में उपस्थित शैव व वैष्णव मत के अनुयायियों ने इन्हें एक–दूसरे पक्ष का मान अत्यंत प्रताड़ित व दुःखी किया। इनकी उदार रामभक्ति रूढ़िवादी वेष्णवों को असहनीय थी और शिव भक्ति देख तिरस्कार किया। इसके अतिरिक्त इनका व्याख्यान देववाणी में न हो कर सहज, सुगम्य, सरल भाषा में होना भी इनके काशी सामंजस्य में कठिन रहा। अतः काशी में मान प्रतिष्ठा न मिली वरन् तिरस्कृत रहे।

तुलसी एक अनन्य भक्त व बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। उनका व्यक्तित्व उनकी रचनाओं व उनके पात्रों के माध्यम से प्रतिफलित होता है। तुलसी का व्यक्तित्व अध्ययन, मनन व चिंतन की प्रखर प्रतिभा से संपन्न था। उन्होंने नाना शास्त्रों और पुराणों तथा भाषा के प्राकृत ग्रंथों का अध्ययन, मनन एंव चिंतन किया। वे काव्य और शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान थे।

''नानापुराणनिमागमसंमंत यद् रामायणे निगदिंत क्वचिदन्यताअपि'' का प्रतिज्ञापन केवल दिखावा नही है। तुलसी के विषय में अब तक सैंकड़ों अनुसंधान कार्य हो जाने के पश्चात भी तुलसी के व्यक्तित्व के विषय में परस्पर विरोधी नीति मत प्रस्तुत किए गए हैं। एक ओर पं0 राम नरेश त्रिपाठी, डॉ0 पदम सिंह शर्मा 'कमलेश', उदयभानु सिंह आदि आलोचकों का वर्ग उन्हें भक्त के साथ–साथ विनीत, विरागी संत की श्रेणी में रखता है। दूसरी ओर डॉ0 जगदीश प्रसाद शर्मा तथा डॉ0 रमेश कुंतल मेघ उनको उद्भट समाज नियंता मानते हैं। उनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ अनेक हैं।

तुलसी ने जीवन के कटु सत्यों को साक्षात किया था। उनके पैरों में बिवइयाँ फटी थीं। लोक में व्याप्त पीड़ा को तुलसी ने खुली आँखों से देखा था। उन्हें आपार कष्ट हुआ। इसलिए उसके प्रति उनमें अपार सहानुभूति थी। तुलसी ने रामानंद द्वारा प्रशस्त मार्ग को जन–जन के हृदय पर युग–युग के लिए अंकित कर दिया। उन्होंने समाज को बाहर से नहीं भीतर से देखा और समझा। वे जहाँ एक ओर संपूर्ण जगत सियाराम मय मान कर पूजते थे वहीं राम प्रेम में चातक की भांति निष्ठा रखते थे। वे रूप की माया से अच्छी तरह परिचित थे। इन सब का प्रभाव उनके मेधावी जीवन में एक नवीन चेतना लेकर आया जिससे मान्वयग्राही तत्व प्रस्फुटित हुआ।

तुलसी साहित्य के मर्मज्ञ आलोचक पं0 सुधाकर पाण्डेय ने अपनी टिप्पणी में कहा ''निर्गुण और सगुण में भेद न मानकर भी उन्होंने लोक की आवश्यकता का अनुभव कर ऐसे राम की प्रतिष्ठा जनजीवन में की, जो युग के राक्षसों को ही नहीं, दशानन रावण को पंदलुठित कर सकने में सामर्थ्य रखता है, जो सुंदरता में अपना सानी न रखने पर भी आपदा आने पर उपकार के लिए अपना कुसुम सा हृदय बज्र का बना सकता

है। तुलसी, सूर व कबीर की पूर्णता बन कर उभरे। समाज को राक्षसों से बचाने के लिए उन्होंने वानरी वृति तक के लोगों के भीतर उनकी सोई हुई शक्ति का उदबोधन कर उन्हें धर्म की प्रतिष्ठा के लिए कर्म पथ पर अग्रसर किया। तुलसी लोक कल्याण की भावना से अनुप्रणित थे। पं0 सुधाकर पाण्डेय ने इस सम्बंध में लिखा है–''लोक कल्याण करके भी व्यक्ति आत्म कल्याण क महत्तम साधना कर सकता है, तुलसी इस बात के प्रतीक हैं।''

तुलसी ने आत्म कल्याण की साधना अपने तक सीमित नहीं रखी, संसार की भी उस सहज पथ पर चलने की प्रेरणा दी। उन्होंने असज्जनों की वंदना की परंतु उनके समक्ष कभी झुके नहीं। उन्होंने लोक में व्याप्त माया, काम तथा क्रोध के विनाशकारी प्रभाव की भर्त्सना की। उनका राम राज्य आज भी सामाजिक चेतना का आदर्श है। उन्होंने आदर्श नारी की प्रतिष्ठा रामानंदी सम्प्रदाय से दीक्षित होने के बाद भी आँख मूंद कर अनुगमन न कर, इसे एक नया रूप प्रदान किया। वे उदार ओर परोपकारी थे। उनका हृदय दया और कोमलता के भावों से आप्लावित था। उनकी रचित कृतियों में उनकी उदारता दृष्टिगोचर होती है। लोक संग्रह की भावना उनकी उदारता का ही परिणाम है। जीवन की कटु परिस्थितियों ने उन्हें कष्ट सहिष्णु बना दिया। अनेक आधिव्याधियों से आक्रान्त होने पर भी उनका मानसिक संतुलन नष्ट नहीं हुआ। तुलसी गंभीर चिंतक तथा मर्यादा प्रतिपालक तथा उसके प्रतिष्ठापक कवि हैं। मर्यादा का उल्लंघन उन्हें किसी भी परिस्थिति में स्वीकार नहीं है।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी रामकथा में मूल्यों की बात की थी, अस्मिता की बात की थी, समन्वय की बात की थी लेकिन आज कही न कहीं तुलसी बाबा की रामकथा पर भी बाजारवाद का प्रभाव दिखाई देता है। आज रामकथा भी बेची जा रही है। विज्ञापन की तरह। साधन पवित्र है लेकिन साध्य कलुषित है। वरिष्ठ आलोचक **शंभुनाथ** की चिन्ता ध्यान देने योग्य है –'' आज एक तरफ भक्ति साहित्य की जड़ अकादमीय शिक्षा दी जाती है, दूसरी तरफ पूरे तामझाम, रेलपेल और गाना–बजाना के साथ रामकथा के लोकप्रियतावादी प्रवचन हैं। कुछ साल पहले तक 'रामचरितमानस' ईश्वर से व्यक्तिगत संबंध बनाने वाला पाठ था। उसे आदमी निजी तौर पर घर में सस्वर पढ़ता था। श्रुतिवेचक प्रवचनकर्ताओं ने 'रामचरितमानस' को भक्ति आंदोलन के परिप्रेक्ष्य से बाहर निकाल कर उसे 'स्वांतः' सुखाय' और 'बहुजन हिताय' से भिन्न 'बहुजन उपभोगाय' माल बना दिया – महज सुकून और मजा देने वाली चीज। तुलसी ने 'रामचरितमानस' की रचना क्षयशील समाज के लिए संजीवनी के रूप में की थी, धार्मिक विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग ने उसे अफीम बना दिया। वे तुलसी को खदेड़ कर रामकथा पर खुद बैठ गए। कहना न होगा कि रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा आदि ने भक्ति की जो व्याख्या दी और ' रामचरितमानस' की विवेचना करते हुए उसके लोकमंगल के जिन व्यापक तत्वों को रेखांकित किया, उन सब पर आज निर्बुद्धिपरक मसाला प्रवचन या बाजारवाद हावी है। यह एक धार्मिक डकैती है।''[6]

तुलसीदास के व्यक्तित्व में विराट गुणों का अद्भुत सामंजस्य था। व्यक्तिगत अनुभवों और युगीन परिस्थितियों के थपेड़ों से निर्मित उनका व्यक्तित्व देश काल की सीमा से ऊपर उठ गया था। उसमें महान कवि, महान समाज सुधारक और भक्त के गुण विद्यमान थे। उनका जन्म एवं योगदान न केवल भारत के लिए गौरव की बात है वरन् समस्त समाज के लिए आदर्श प्रेरणादायिनी संपति है।

आधुनिक दृष्टि परलोक की चिन्ता न कर इहलोक में इसी जीवन को सुखी बनाने के लिए सतत संघर्ष की प्रेरणा देती है मनुष्य के

दुःख–कष्ट के लिए वह भाग्य को नहीं, अज्ञान एवं सामाजिक दुर्व्यवस्था को जिम्मेदार मानती है तुलसी ने भाग्य और परलोक को स्वीकारते हुए भी उद्योग और इहलोक के महत्व को भली–भाँति प्रतिपादित किया है। सामाजिक दुर्व्यवस्था, रावणी अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष उन्हें भी अभिष्ट है। राम–रावण के युद्ध के माध्यम से तुलसीदास ने बाहर और भीतर चलने वाले शुभ और अशुभ के द्वन्द्व में शुभ का समर्थक राम का सैनिक बनने की जबरदस्त प्रेरणा दी है। पूरे मध्यकाल में वे शायद अकेले सन्त हैं जिन्होंने राम का नाम जपने पर इतना जोर दिया है उतना ही जोर दिया राम के काम करने पर अर्थात राम का काम करने के लिए ही तुम्हारा जन्म हुआ यही उनका सन्देश है। तुलसी का मानना है कि राम रूपी कार्य व्यक्ति का अपना निजी कार्य है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि गोस्वामी तुलसीदास भारतीय संस्कृति और मूल्यों के संरक्षक कवि हैं। उनकी रामकथा की पयस्विनी सदियों से जिस तरह कलि–मल का प्रच्छालन करती रही है उसी तरह आगे भी करती रहेगी। अवरोध तब भी थे। अवरोध अब भी हैं। सच्चे गोता–खोर को मोती मिल ही जाता है।

संदर्भ

1. शंभुनाथ,–'दुस्समय में साहित्य', वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण प्रथम 2002, पृष्ठ–35
2. डॉ. शिवकुमार मिश्र,–'भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य', प्रथम लोकभारती संस्करण : 2010, इलाहाबाद, पृष्ठ–227
3. डॉ. शिवकुमार मिश्र,–'भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य', प्रथम लोकभारती संस्करणः 2010, इलाहाबाद, पृष्ठ–227
4. शंभुनाथ,–'दुस्समय में साहित्य', वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण प्रथम 2002, पृष्ठ–39
5. डॉ. शिवकुमार मिश्र,–'भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य', प्रथम लोकभारती संस्करणः 2010, इलाहाबाद, पृष्ठ–205,206
6. डॉ. शिवकुमार मिश्र,–'भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य', प्रथम लोकभारती संस्करणः 2010, इलाहाबाद, पृष्ठ–10

अन्य संदर्भ

- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,– 'त्रिवेणी', नागरीप्रचारिणी सभा वाराणसी, संस्करण 54 वि. 2057, पृष्ठ–67
- शंभुनाथ,–'दुस्समय में साहित्य', वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण प्रथम 2002, पृष्ठ–35
- सम्पादक–प्रो. वासुदेव सिंह, तुलसीदास, अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1999, पृष्ठ–214

Copyright © 2017, Jagpal Singh Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.